अप्रैल-जून २०२४

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्

[संस्थापित : सन् 1900]

इंडियन प्रेस की रचनात्मक एवं वैचारिक साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका

सरस्वती

भारतीय चेतना की ध्वजवाहिका

यह अंक
अस्सी रुपये मात्र

वार्षिक
तीन सौ रुपये (डाक खर्च 80 रुपये अतिरिक्त)
(व्यक्तियों के लिए, चार अंक के लिए)

छः सौ रुपये (डाक खर्च 20 रुपये अतिरिक्त)
(संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए, चार अंक के लिए)

विदेश के लिए
चालीस डॉलर (चार अंक के लिए)

(कृपया भुगतान **'इंडियन प्रेस पब्लिशिंग प्रा. लिमिटेड'** के नाम डिमांड ड्राफ्ट/चेक/धनादेश से प्रबंधकीय कार्यालय के पते पर भेजें)
NEFT द्वारा भेजने के लिए बैंक-
Punjab National Bank
A/c No. : 0270050001483
IFSC : PUNB0027020
धनादेश अथवा बैंक-स्थानांतरण का संदर्भ
व्हाट्सएप नम्बर 09936660887 पर सूचित करें

आवरण चित्र - सुप्रसिद्ध चित्रकार पारुल तोमर
रेखांकन - अंतरिक्ष, हिमाचल
अक्षर संयोजन - शरद कुमार अग्रवाल, ऑन लाइन कम्प्यूटर सर्विसेज़

Saraswti A quarterly journal of Hindi,
Printed by Indian Press Publications Pvt. Ltd.,
36, Panna Lal Marg, Prayagraj-211001
Uttar Pradesh, India

रचनाकारों से आग्रह है कि कृपया अपनी रचनाएँ सरस्वती के मेल saraswati.indianpress@gmail.com पर ही भेजें

'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में आने वाले विचार रचनाकारों के अपने हैं। उनसे सम्पादकीय सहमति की आवश्यकता नहीं है। 'सरस्वती' से सम्बन्धित किसी प्रकार के वाद का परिक्षेत्र प्रयागराज/इलाहाबाद होगा।

अनुक्रम

संपादकीय

लोक साहित्य मनुष्य का आदिम राग है — रविनन्दन सिंह ... 5

धरोहर

प्राचीन पंडित और कवि भवभूति — आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ... 9

आलेख

1. धर्मवीर भारती : एक बड़े कवि और बड़े संपादक — प्रकाश मनु ... 16
2. मीरा की कृष्ण-भक्ति का पुनर्पाठ — कँवल भारती ... 27
3. न्याय और प्रगति ही कसौटी : गौतम बुद्ध — निरंजन सहाय ... 40
4. गाँव की जमीन पर 'तितली' — संजय गौतम ... 48

कहानी

1. प्रेम के दलदल — मोतीलाल दास ... 55
2. शुक्रिया जनाब — राम नगीना मौर्य ... 59
3. घसीटा — पुष्पेश कुमार पुष्प ... 67
4. सितार की धुन — अनिता रश्मि ... 71
5. सपने और नियति — सुषमा मुनीन्द्र ... 79
6. पुरवा की बिजली — प्रतिमा भारतीया ... 89
7. निम्मो — पूजा गुप्ता ... 94
1. जीम के जान्ना — सुनीता मिश्रा ... 101

लघु कथा

1. राजनीति — रन्दी सत्यनारायण राव ... 104
2. भरोसा रखना — प्रियंका पाठक ... 105
3. बदलाव — सिमरन ... 106

हास्य व्यंग्य

1. सरकारी बाबू — विनोद कुमार विक्की ... 107

कविताएँ

1. राजकुमार गीत ... 109
2. रविशंकर सिंह ... 112
3. दिव्यलता शर्मा ... 113
4. ज्योतिकृष्ण वर्मा ... 115

न्याय और प्रगति ही कसौटी : गौतम बुद्ध

निरंजन सहाय

भारत में न्याय और प्रगति की अवधारणा के निर्माण में अनेक सिद्धांतों, व्यवस्थाओं और धर्मों की भूमिका रही है। इस सिलसिले में हम मुख्य रूप से हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम या फिर आज़ाद भारत की सम्वैधानिक व्यवस्था को याद कर सकते हैं।इस सुदीर्घ यात्रा में आत्म-नियंत्रण, निष्पक्षता, सच्चाई और अच्छाई के गुणों के साथ बौद्ध धर्म की न्याय और प्रगति की अवधारणा का भारतीय संवैधानिक प्रणाली पर सर्वाधिक सघन और युगांतकारी प्रभाव पड़ा। मौजूदा दौर में भी इन सन्दर्भों के अनेक संदेश और स्थापनाओं को संविधान के सिद्धांतों से जोड़ा जाता है और उच्चतम न्यायालय तक के निर्णयों में बार-बार उद्धृत किया जाता है।

तवारीखों के परत-दर-परत की यात्रा हमें इन्साफ की अवधारणा से रू-ब-रू कराती है। भारत में इन्साफ या न्याय की कहानी पश्चिमी पंजाब में सिंधु घाटी सभ्यता से शुरू हुई। यह सभ्यता अत्यधिक संगठित एवं आज की शब्दावली में कहें तो धर्मनिरपेक्ष थी। उस समय के व्यापार, मिट्टी के बर्तन, जल निकासी व्यवस्था और नागरिक संरचना में सबसे कम भेदभाव था और आज भी दुनिया भर में इसे नजीर के रूप में याद किया जाता है। फिर आर्यों का दौर शुरू हुआ और नियमों और विनियमों का अलग दौर आया। आर्य धर्म केवल एक धर्म नहीं था, बल्कि इसमें विधान, नैतिक संहिताएँ, धार्मिकता और न्याय की विशिष्ट अवधारणा शामिल थी और यह सभी वैदिक और गैर-वैदिक विश्वासों पर समान रूप से लागू होती थी। इस सिलसिले में अगले पड़ाव के रूप में हम बौद्ध धर्म का उल्लेख कर सकते हैं। कहना न होगा स्वाधीन भारत की वैधानिक व्यवस्था पर इसका सबसे गहरा प्रभाव पड़ा। बौद्ध धर्म छठी शताब्दी ईसा पूर्व में उस समय प्रचलित विभिन्न प्रथाओं के विकल्प के रूप में शुरू हुआ। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के आसपास भगवान बुद्ध के निधन के बाद, बौद्ध धर्म ने उपदेश दिया कि 'कुछ भी स्थायी नहीं है और परिवर्तन ही एकमात्र स्थिर है'। आत्मज्ञान का मार्ग नैतिकता, मध्यस्थता और ज्ञान का अभ्यास है। बौद्ध धर्म ने तर्क और विवेक की अपील की। इस अवधारणा ने चार महान सत्यों को अपनाया- दुख, कारण, समाधान और इसे दूर करने का तरीका। जो लोग इस पीड़ा को समाप्त कर देते हैं उन्हें निर्वाण प्राप्त होता है। इसके अलावा, भगवान बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण किया, जिसे आर्य अष्टांगिक मार्ग के रूप में जाना जाता है - सही विश्वास, सही आकांक्षाएं, सही सम्वाद या वाक् प्रयोग, सही आचरण, आजीविका का सही तरीका, सही प्रयास, सही मानसिकता और सही उत्साह। ये मार्ग और चार आर्य सत्य वे सिद्धांत हैं जो हम मोटे तौर पर किसी भी विकसित न्यायिक व्यवस्था में पाते हैं।बौद्ध धर्म की न्याय अवधारणा के केंदीयव्यक्तित्त्व थे- गौतम बुद्ध। उनके जीवन और दर्शन में इन अवधारणों के आने की कहानी दिलचस्प और मानीखेज है।

1

न्याय की शुरुआत गौतम बुद्ध के यहाँ उनके बचपन से ही दिखाई पड़ती है। उन्होंने शाक्य संघ की जब दीक्षा प्राप्त की, उसके बाद से ही उनके अंदर मानव और जीव के साथ हुए हर एक अन्याय के खिलाफ सोचने-

समझने और बरतने की शिक्षा मिली। संघ का नियम था कि '(1) यदि आप बलात्कार करते हैं, तो संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे। (2) यदि आप किसी की हत्या करते हैं, तो आप संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे। (3) यदि आप चोरी करते हैं, तो अप संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे। (4) यदि आप गलत साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, तो आप संघ के सदस्य नहीं रह पाएँगे।' इससे हम यह देखते हैं कि शाक्य संघ में जिस न्याय की बात की गई है उसे स्वीकार करते हुए गौतम बुद्ध संघ को स्वीकार करते हैं। लेकिन बहुत जल्द ही बुद्ध का शाक्य संघ से मतभेद भी उजागर होता है। हुआ कुछ यूँ था कि 'शाक्यों के राज्य से सटा हुआ कोलियों का राज्य था। दोनों साम्राज्यों की विभाजक रेखा रोहिणी नदी थी। खेत सींचने के लिए शाक्य और कोलिय दोनों रोहिणी नदी के पानी का उपयोग करते थे। प्रत्येक वर्ष दोनों के बीच विवाद होता था कि रोहिणी नदी का पानी पहले कौन और कितना लेगा? इन विवादों के कारण कभी-कभी झगड़े हो जाते थे और दोनों ओर से लोग घायल भी हो जाते थे। सिद्धार्थ की आयु के अठाइसवें वर्ष में पानी के लिए शाक्यों के नौकरों और कोलिय के नौकरों के बीच बड़ा विवाद हो गया। दोनों तरफ के लोग घायल भी हुए। ऐसा जानकर शाक्यों और कोलियों ने अनुभव किया कि युद्ध के द्वारा इस विवाद को सदा के लिए सुलझा देना चाहिए। इसलिए शाक्यों के सेनापति ने कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की चर्चा के लिए संघ की एक सभा बुलाई। संघ के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए सेनापति ने कहा- 'हमारे लोगों पर कोलियों ने आक्रमण किया और हमारे लोगों को पीछे हटने के लिए मजबूर होना पड़ा। कोलियों द्वारा इस प्रकार की आक्रामक कार्यवाही पहले भी हो चुकी है। आज तक हमने उन्हें सहन किया है। लेकिन ऐसे काम नहीं चल सकता। इसे रोकना ही चाहिए और रोकने का एक ही उपाय है-कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा। मेरा प्रस्ताव है कि संघ द्वारा कोलियों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी जाए, जो इसका विरोध करना चाहें, वह बोलें।' सिद्धार्थ गौतम अपने स्थान पर खड़े हुए और बोला- 'मैं इस प्रस्ताव का विरोध करता हूँ। युद्ध से कभी किसी समस्या का हल नहीं होता। युद्ध छेड़ देने से हमारे उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। इससे दूसरे युद्ध का बीजारोपण होगा। किसी की हत्या करने वाले को कोई दूसरा हत्या करने वाला मिल जाता है। जीतने वाले को दूसरा जीतने वाला मिल जाता है, लूटने वाले को दूसरा लूटने वाला मिल जाता है।' सिद्धार्थ गौतम ने अपना कहना जारी रखा 'मुझे लगता है कि कोलियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने में संघ को जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। पहले सावधानीपूर्वक जाँच करनी चाहिए कि कौन पक्ष दोषी है। मैंने सुना है कि हमारे आदमियों ने ज्यादती की है। यदि यह सत्य है, तो हम लोग भी दोष-मुक्त नहीं हैं।' सेनापति ने उत्तर दिया 'हाँ, यह ठीक है कि हमारे आदमियों ने ही पहल की थी, लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि पानी लेने की बारी पहले हमारी थी।' सिद्धार्थ गौतम ने कहा 'इससे स्पष्ट है कि हम लोग भी पूर्णतः दोषमुक्त नहीं है। इसलिए हम अपने में से दो आदमियों को चुनें और कोलियों से भी कहा जाए कि वे भी दो आदमी चुनें। फिर चारों मिलकर एक पाँचवाँ आदमी चुनें और पाँचों मिलकर विवाद का निपटारा करें।' - सिद्धार्थ गौतम ने जिस संशोधन का सुझाव दिया, उसे विधिवत समर्थन मिला। लेकिन सेनापति ने इस सुझाव का यह कहते हुए विरोध किया-'मैं पूर्णतः आश्वस्त हूँ कि कोलियों का संकट उन्हें कठोर दण्ड दिए बिना समाप्त नहीं हो सकता।' इसलिए प्रस्ताव और संशोधन दोनों मतदान के लिए रखे गए। पहले सिद्धार्थ के संशोधन को मतदान के लिए रखा गया, वह भारी बहुमत से अमान्य हो गया। उसके बाद सेनापति ने अपने प्रस्ताव पर मत माँगे। सिद्धार्थ गौतम इसके विरोध में फिर खड़ा हुआ और उसने कहा- 'मेरी प्रार्थना है कि संघ इस प्रस्ताव को स्वीकार न करे। शाक्य कोलियों के निकट संबंधी हैं। एक दूसरे को बरबाद करना मूर्खता है।' सेनापति ने सिद्धार्थ गौतम के तर्क का सर्वथा विरोध किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि युद्ध में क्षत्रिय

के लिए कोई अपना और पराया नहीं होता। साम्राज्य की रक्षा के लिए उन्हें अपने भाइयों से भी संघर्ष करना चाहिए। यज्ञ करना ब्राह्मणों का, युद्ध करना क्षत्रियों का, व्यापार करना वैश्यों का और सेवा करना शूद्रों का धर्म है। हर वर्ग को अपना धर्म निभाने में पुण्य मिलता है। यही शास्त्र का आदेश है। सिद्धार्थ ने उत्तर दिया 'जहाँ तक मैंने धर्म को समझा है, वह इसे समझने में है कि वैर से वैर कभी शान्ति नहीं होता। वैर केवल प्रेम से ही शान्त हो सकता है।' अधीर होकर सेनापति ने कहा 'इस प्रकार के दार्शनिक शास्त्रार्थ में पड़ना एकदम बेकार है। सिद्धार्थ को मेरा प्रस्ताव अमान्य है। हम संघ का मत लेकर इसका निश्चय करें कि इस पर संघ का क्या विचार है।' सेनापति ने अपना प्रस्ताव मत लेने के लिए रखा। भारी बहुमत से प्रस्ताव पास हो गया'।[1]

2

इसी तरह शाक्य संघ से अलग होने के बाद बुद्ध ने न केवल ज्ञान को अर्जित करने के लिए अपने जीवन को खपाया बल्कि उन्होंने सत्य और न्याय को हमेशा से आगे रखा। उनके अनुसार न्याय ही एक मात्र साधन है, जिससे सत्य को पाया जा सकता है। ज्ञान अर्जन के दौरान उन्होंने उस समय प्रचलित एवं बहुतायत में लोक में व्याप्त हिन्दू धर्म में फैले आडम्बरों को भी चिन्हित करके उसे खत्म करने के लिए आह्वान भी किया। इसे तत्कालीन समाज में प्रभुत्त्वशाली लोगों के द्वारा विरोध का भी सामना करना पड़ा क्योंकि उन्हें अपना वर्चस्व खतरे में जान पड़ा। यह प्रकृति का नियम जैसा है कि जब भी किसी की सत्ता खतरे में महसूस होती है तब उनके द्वारा तरह-तरह के हथकंडे अपनाये जाते हैं। कई बार तो यह सारे प्रयत्न प्रकृति के न्याय को भी धत्ता बताते हए अपनी सत्ता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं।

इन्हीं सब कारणों से असहमत और करुणामय होकर बुद्ध ने 'धम्म' का प्रचार किया। 'धम्म' और 'धर्म' दोनों एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। 'धर्म या रिलीजन व्यक्तिगत है और मनुष्य को इसे अपने तक ही रखना चाहिये। किसी मनुष्य को इसकी सार्वजनिक जीवन में भूमिका नहीं निभानी चाहिये। इसके विपरीत 'धम्म' सामाजिक है। धम्म मूलभूत और आवश्यक रूप से ऐसा है। धम्म सदाचरण है, जिसका अर्थ जीवन के सभी क्षेत्रों में एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के प्रति व्यवहार है'।[2]

बुद्ध के अनुसार धम्म और धर्म का उद्देश्य भी अलग-अलग है 'धर्म (रिलीजन, मज़हब) का सृष्टि के आरम्भ के बताए जाने से सरोकार है, धम्म का एकदम नहीं।[3] धर्म और नैतिकता जहाँ से न्याय की उत्पत्ति आमतौर पर मानी जाती है, उसके बारे में बुद्ध का कहना है कि 'धर्म (रिलीजन या मज़हब) के अन्तर्गत ईश्वर, आत्मा, प्रार्थनायें, पूजा, कर्म-काण्ड, रीति-रिवाज और बलि-कर्म समाहित हैं। नैतिकता केवल उसी मध्य आती है जहाँ मनुष्य-मनुष्य के सम्पर्क में आता है। धर्म में नैतिकता मात्रा शान्ति और व्यवस्था की स्थापना के लिये एक सहासक हवा के झोंके की तरह आती है। प्रत्येक धर्म नैतिकता का उपदेश तो देता है, किन्तुनैतिकता धर्म का मूलाधार नहीं है। इसलिए धर्म में नैतिकता का अहिन्सा कार्य आकस्मिक और प्रासंगिक है। जिसका कभी-कभी प्रयोजन रहता है। अतः धर्म में नैतिकता प्रभावकारी नहीं है'।[4]

बुद्ध नैतिकता को धर्म से नहीं अपितु 'धम्म' से जोड़कर देखते हैं और कहते हैं- 'नैतिकता धम्म है और धम्म नैतिकता है। दूसरे शब्दों में यद्यपि धम्म में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है, तो धम्म में 'नैतिकता' का वही स्थान है जो धर्म में 'ईश्वर' का। धम्म में प्रार्थनाओं, तीर्थ-यात्राओं, कर्म-काण्डों, रीति-रिवाजों या बलियों के लिए कोई स्थान नहीं है। 'नैतिकता' ही धम्म का सार है। इसके बिना कोई 'धम्म' नहीं है।[5]

बुद्ध न्याय की नई परिभाषा देते हुए संघ में सबसे पहले नाई उपालि को दीक्षा देते हैं और उसके बाद सदियों से उनका शोषण करने वाले शाक्यों को संघ में प्रवेश देते हैं। वहाँ पर शाक्य कहते हैं 'हम शाक्य, भगवान, अभिमानी स्वभाव के हैं। और यह नाई उपालि एक लम्बे

समय से हमारी सेवा करता आ रहा है। भगवान हम से पहले इसे संघ में प्रवेश दें, जिससे कि हम इसे आदर और सत्कार दें और अपना ज्येष्ठ मान कर इनके सामने हाथ फैलाकर प्रणाम करें। इस प्रकार हम में शाक्यों का अभिमान विनम्र होगा।'[6] बुद्ध हमेशा ही शोषितों, पीड़ितों को पहले स्थान देते हैं। सामाजिक न्याय की आधुनिक परिभाषा को भी अगर हम देखते हैं तो हम देखेंगे कि शोषितों, पीड़ितों, मजदूरों, स्त्रियों की बात पहले की जाती है, इसका कारण है कि वैदिक काल से ही ये सभी उपेक्षा के शिकार है। ब्राह्मण ग्रंथों में वर्ण व्यवस्था और उनकी सुविधाओं और विशेषाधिकारों के बारे में विस्तार से वर्णन है। जहाँ बताया गया है कि ब्राह्मण को वे सभी अधिकार एवं विशेष सुविधाएं प्राप्त थीं, जिनकी वह इच्छा रखता था। लेकिन एक क्षत्रिय उतना अधिकार एवं विशेष सुविधाओं का दावा नहीं कर सकता था, जितना कि एक ब्राह्मण कर सकता था। एक वैश्य की अपेक्षा उसके पास अधिक अधिकार एवं विशेष सुविधाए प्राप्त थीं। वैश्य के अधिकार एवं विशेष सुविधाएं शूद्रों की अपेक्षा अधिक थीं। लेकिन वह एक क्षत्रिय के बराबर दावा नहीं कर सकता था। शूद्र को कोई अधिकार प्राप्त नहीं था, तो विशेष सुविधाओं की तो बात ही कहाँ उठती है। उसका विशेषाधिकार केवल यही था कि वह ऊपर के तीनों वर्णों को रुष्ट किए बिना, जीवित रह उनकी सेवा करता है। चातुर्वर्ण्य का अगला नियम व्यवसाय के विभाजन से संबंधित था। ब्राह्मण का व्यवसाय पढ़ना-पढ़ाना और धार्मिक कृत्यों का संचालन कराना था। क्षत्रिय का व्यवसाय युद्ध करना था। व्यापार वैश्य के हिस्से में था। शूद्रों का व्यवसाय ऊपर के तीनों वर्णों की सेवा करना था। अलग-अलग वर्णों के व्यवसाय अनन्य रूप से अलग थे। एक वर्ण दूसरे के व्यवसाय को नहीं अपना सकता था। चातुर्वर्ण्य का अगला नियम शिक्षा के अधिकार से संबंधित था। चातुर्वर्ण्य के ढांचे के अनुसार शिक्षा का अधिकार ऊपर के तीन वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को ही प्राप्त था। शूद्रों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया। चातुर्वर्ण्य का यह नियम केवल शूद्रों को ही शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं रखता था, बल्कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की स्त्रियों को भी शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया था। अगले नियम के अनुसार मनुष्य के जीवन को चार भागों (स्तरों) में बाँटा गया था। पहली आश्रम ब्रह्मचर्य, दूसरी गृहस्थाश्रम, तीसरी वानप्रस्थ और चौथा आश्रम संन्यास की अवस्था कहलाती है। प्रथम आश्रम का उद्देश्य अध्ययन और शिक्षा था। दूसरे आश्रम का उद्देश्य विवाहित जीवन बिताना था। तीसरी अवस्था का उद्देश्य आदमी को वन-वासी जीवन से परिचित कराना था अर्थात् घर को छोड़े बिना ही पारिवारिक बंधनों से मुक्त होना। चौथे आश्रम का उद्देश्य आदमी को संन्यासी बनकर इस योग्य बनाना था कि वह ईश्वर की खोज में निकले और उससे मिलने का प्रयास करे। इन आश्रमों के लाभ केवल ऊपर के तीन वर्णों को पुरुषों के लिए थे। पहला आश्रम शूद्रों और स्त्रियों के लिए खुला नहीं था। इसी प्रकार अंतिम आश्रम भी शूद्रों और स्त्रियों के लिए वर्जित था।

इसीलिए बुद्ध ने उपालि के बाद मेहतर सुणीत, अछूत सोपाक और सुप्पिय को धर्म संघ की दीक्षा दी। इसके बाद उन्होंने सुमंगल के साथ अन्य निम्न कही जाने वाली जातियों के सदस्यों को दीक्षा दी तत्पश्चात उन्होंने कोढ़ी सुप्रबुद्ध को उपदेश देते है और सत्य क्या है, उन्हें बताते और समझाते हैं। कोढ़ी सुप्रबुद्ध के लिये तथागत ने क्रमशः इन विषयों से सम्बन्धित एक धर्मापदेश दिया। भिक्षादान पर, पवित्र जीवन पर, स्वर्ग-लोक पर और उन्होंने काम सुखों की तुच्छता और निरर्थकता तथा आश्रवों से मुक्ति के लाभ का निर्देश दिया। जब तथागत ने देखा कि कोढ़ी सुप्रबुद्ध का चित्त विनम्र हो गया, आज्ञाकारी हो गया, मुक्त हो गया, ऊपर उठ गया और श्रद्धा से पूर्ण हो गया, तब उन्होंने उसे बुद्धों के सर्वोत्कृष्ट धम्म का उपदेश दिया, अर्थात्, दुःख, दुख समुदय, दुख निरोध और दुख निरोध की ओर से जाना वाला मार्ग। जिस प्रकार एक श्वेत वस्त्र, दाग-धब्बों से मुक्त, रंग को अच्छी तरह ग्रहण करने के लिये तैयार है, उसी प्रकार कोढ़ी सुप्रबुद्ध में, जैसे कि वह ठीक उसी स्थल पर बैठा था, सत्य की शुद्ध विमला

प्रज्ञा उत्पन्न हुई, यह सत्य कि जिस किसी का भी प्रारम्भ है, उसका अवश्य ही एक अन्त भी होगा। और कोढ़ी सुप्रबुद्ध ने सत्य को देखा, सत्य तक पहुँचा, सत्य का अनुभव किया, सत्य में निमग्न हो गया, सन्देह के परे चले गया, सभी जिज्ञासाओं से मुक्त हो गया, विश्वास जीत लिया, और उसे और कुछ भी करणीय नहीं रहा, तथागत की देशना पर सुप्रतिष्ठित होकर, अपने आसन से ऊपर उठकर और तथागत के समीप जाकर, और वहाँ एक ओर वह बैठ गया। इस प्रकार बैठे हुए उसने तथागत से कहा, 'अद्भुत, हे भगवन्! अद्भुत, हे भगवन् जिस प्रकार कोई गिरे हुए को उठा ले, छुपे हुए को खोज ले किसी रास्ता भूले को रास्ता दिखा दे, अन्धकार में एक प्रदीप दर्शा दे, जिससे जिनके पास आँखें हैं, वे आकारों को देख सकें, इसी प्रकार तथागत ने नाना प्रकार से सत्य की व्याख्या की। मैं, यहाँ तक कि मैं, भगवन् बुद्ध, धर्म और भिक्षुओं के संघ की शरण ग्रहण करता हूँ। कृपया तथागत! मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लें। भगवान आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे अपना शरणागत उपासक समझें।' इसके बाद कोढ़ी सुप्रबुद्ध तथागत की पुण्य वाणी से प्रसन्न हुआ, उनकी वाणी की प्रशंसा और स्वागत करके, धन्यवाद देकर, अपने आसन से उठा, दाहिनी ओर से तथागत का अभिवादन किया और चला गया।

3

न्याय और न्यायी इन्सान की पहचान बताते हुए बुद्ध कहते हैं 'मनुष्यों के चार वर्ग हैं। यदि तुम जानना चाहते हो कि कौन सज्जन और न्यायी मनुष्य है, तो तुम्हें उनकी पहचान करना सीखना चाहिए। भिक्षुओ! मनुष्यों का एक वर्ग ऐसा है, जो अपने कल्याण के लिये प्रयास करता है, किन्तु दूसरों के लिए नहीं। इसमें एक मनुष्य अपने भीतर के कामच्छन्द के उन्मूलन का अभ्यास करता है, किन्तु दूसरों के भीतर के कामच्छन्द के उन्मूलन को प्रेरित नहीं करता। अपने भीतर के व्यापाद के उन्मूलन का अभ्यास करता है, किन्तु दूसरों के भीतर के व्यापाद के उन्मूलन को प्रेरित नहीं करता है। और साथ ही अपने भीतर की अविद्या के उन्मूलन का अभ्यास करता है किन्तु दूसरों के भीतर की अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित नहीं करता है।

मनुष्यों का एक वर्ग ऐसा है, जिसने दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास किया है, किन्तु अपने लिये नहीं। इसमें एक मनुष्य अपने भीतर के कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन के लिये ही अभ्यास नहीं करता, बल्कि दूसरों के भीतर कामच्छन्द व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित करता है।

मनुष्य का एक वर्ग ऐसा है जो न तो स्वयं अपने कल्याण के लिये और न ही दूसरों के कल्याण के लिये प्रयास करता है। इसमें एक मनुष्य न तो अपने भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन का अभ्यास करता है और न ही दूसरों के भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित करता है।

मनुष्यों का एक वर्ग ऐसा है, जो स्वयं अपने कल्याण के लिये प्रयास करता है और साथ ही साथ दूसरों के कल्याण के लिये भी। इसमें मनुष्य अपने भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन का अभ्यास करता है और साथ ही साथ दूसरों के भीतर कामच्छन्द, व्यापाद और अविद्या के उन्मूलन को प्रेरित करता है।यह अन्तिम मनुष्य ही न्यायी और सज्जन माना जाना चाहिये'।[7]

4

अहिंसा न्याय का मूल है। जीव हिंसा न करना बुद्ध की शिक्षा का एक अनिवार्य अंग है। इसका सम्बन्ध करुणा और मैत्री से है। फिर भी कई विद्वानों ने यह सवाल उठाया है कि बौद्ध धर्म में हिंसा निरपेक्ष है या सापेक्ष? क्या यह केवल शील तक ही सिमित है कि ऐसा कोई नियम भी था? जो लोग बुद्ध का अनुसरण करते हैं उनके लिए अहिंसा को एक निरपेक्ष कर्तव्य के रूप में स्वीकार करना बहुत ही मुश्किल भरा कदम है। वे कहते हैं कि 'अहिंसा की एक ऐसी परिभाषा बुरे के लिए अच्छाई का बलिदान तथा दुर्गुण के लिए सद्गुण का बलिदान सम्मिलित

करती है।'[8] अहिंसा के सम्बन्ध में बुद्ध का मानना अहिंसा के आम परिभाषा से अलग प्रतीत होता है। बौद्ध धम्म में अहिंसा का अर्थ यह नहीं है कि 'मारो नहीं' बल्कि वहाँ अहिंसा का मतलब 'सभी से प्रेम करो' के सम्बन्ध में इस्तेमाल में लिया गया है। उनका अभिप्राय 'जीव हत्या करने की चेतना' और 'जीव हत्या करने की आवश्यकता' के बिच फर्क करने का है। उन्होंने जीव हत्या का पूर्णतः निषेध न करते हए हुए जहाँ जीव-हत्या की आवश्यकता है वहाँ हत्या को हिंसा न कहा है। बौद्ध देशों के लोगों ने अहिंसा को किस रूप में समझा है और किस प्रकार व्यवहार किया है? यह जानना भी अतिमहत्वपूर्ण है। श्रीलंका के भिक्षु विदेशी आक्रमणकारियों के खिलाफ़ लड़ाई लड़ी और आपने जनता से भी इसके लीये आह्वान किया जबकि वहीं दूसरी ओर म्यांमार के भिक्षु विदेशी आक्रमणकारियों से लड़ने से मना कर देते हैं और अपनी जनता से भी ऐसा ही करने को कहते हैं।म्यांमार के लोग अंडा को शाकाहारी मानते हैं और खाते हैं जबकि मछली का परित्याग करने को कहते हैं। इसी तरह से उनके यहाँ अहिंसा को बोला समझा गया। कुछ समय पहले ही जर्मन बौद्ध समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया है कि उन्होंने पहले शील (जीव-हिंसा से विरत) अहिंसा को छोड़कर सभी चार शील को स्वीकार करते हैं। वे सभी निम्नवत हैं-

I. अदिन्नादाना वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।

II. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।

III. मुसावादा वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।

IV. सुरा-मेरय-मज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी- सिक्खापदं समादयामि।।[9]

हिन्दी में इसका भाव निम्नवत है-

i. चोरी न करना,

ii. व्यभिचार न करना,

iii. झूठ न बोलना,

iv. नशा न करना।

कहना न होगा बुद्ध के संदेश देश, काल और परिस्थितयों के मुताबिक परिवर्तनशील रहे।

5

निर्वाण के ढाई हजार साल बाद उपभोक्तावाद के मौजूदा दौर में भारतीय परम्परा के अप्रतिम साधक बुद्ध के विचारों की आखिर क्या प्रासंगिकता है? व्यक्ति की निजता या अनुपमता के बरअक्स बाज़ार की एकरूपता के उत्सवधर्मी दौर में युवा पीढ़ी के लिए बुद्ध के जीवन और सन्दर्भों की आखिर कोई संगती है क्या? आपनी-अपनी राह को सर्वश्रेष्ठ ठहराने के लिए कत्लेआम पर उतारू मौजूदा दौर के धर्मसाधकों के बीच आखिर बुद्ध की करुणा और अहिंसा की इबारत का कोई औचित्य है क्या? दरअसल बाज़ार और अध्यात्मिक फरेब के इस दिलकश दौर में स्वर्ग, परलोक, पुनर्जन्म और अलौकिक शक्तियों की दिनोंदिन बढ़ती महिमाओं के बीच तर्क और अंतः प्रज्ञा के पक्षधर साधक बुद्ध के विचारों की प्रासंगिकता पहले से कहीं ज्यादा है।

वस्तुतः प्रबुद्ध आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित बुद्ध का दृष्टिकोण बहुत व्यावहारिक था और कई दृष्टियों से एकदम आधुनिक। वे शब्दों या अध्यात्मिक फरेब रचकर विस्तृत धर्मविज्ञान या धर्मशास्त्र गढ़ने के विचार से एकदम असहमत थे। बुद्ध चाहते थे कि लोग अपने विवेक या अंतः प्रज्ञा को अधर मानते हए, अच्छे या बुरे परिणामों के अपने अनुभवों का इस्तेमाल करें और इसी अधार पर दर्शन की बुनियाद खड़ी करें। अपने प्रिय शिष्य आनंद को जीवन का अंतिम सन्देश देते हुए बुद्ध ने कहा, 'इस तरह जियो जैसे प्रकाश तुम्हारे भीतर है, इसके अतिरिक्त कोई प्रकाश नहीं है।' इस लिहाज से वे कई अन्य धर्मगुरुओं से अलग थे क्योंकि वे अंतिम फैसला प्रश्नकर्ता पर ही छोड़ देते थे।

आधुनिक जीवन-जगत की आपाधापी के बीच आदमी अक्सर खुद को अलग-थलग पाता है। ऐसे में वैयक्तिक दर्शन देने की बुद्ध की इस पहल को नयी

अर्थवत्ता प्राप्त होती है, क्योंकि यह दर्शन व्यक्ति को अपने फैसले के आधार पर सोचने और जीने की राह दिखाता है। वैज्ञानिक चेतना और बुद्धिवादी दौर में बुद्ध का आह्वान उन सभी स्त्रियों और पुरुषों के एकाकी मन को सीधे संबोधित करता है, जिनमें समुदाय, चर्च या अन्य धार्मिक निकायों के साथ अपनत्व या लगाव की भावना का सर्वथा अभाव है।

बुद्ध के जीवन की एक मशहूर कहानी है। उनके शिष्य मोग्गल्लान ने उनसे पूछा, 'क्या बुद्ध के सभी अनुयायी संसार के दुखों से निश्चित रूप से मुक्त हो जाएंगे? बुद्ध ने प्रतिप्रश्न किया, 'क्या तुम राजगृह (राजगीर) का रास्ता जानते हो?मोग्गल्लान का जबाब था 'हाँ'। बुद्ध ने फिर पूछा 'क्या तुम वहाँ जाने का रास्ता बता सकते हो?' मोग्गल्लान के हाँ कहने के बाद बुद्ध ने कहा, 'तुम्हारे बताए रास्ते पर चलकर संभव है एक राही राजगृह पहुँच जाए , लेकिन हो सकता है कि कोई दूसरा रास्ता भटक जाए और वहाँ न पहुँच सके।' मोग्गल्लान ने अचरज के साथ कहा, 'क्या यह भी मेरा काम है गुरुदेव? मैंने तो बस रास्ता दिखाया।' बुद्ध ने इसके बाद बेहद मूल्यवान सन्देश दिया, 'मैं भी केवल रास्ता दिखाता हूँ। मेरे कुछ अनुयायी पहुँच जाते है और कुछ नहीं पहुँचते। गुरु का कम केवल राह दिखाना है।'8 कहना न होगा, अनेक धर्मगुरुओं से अलग बुद्ध ने अपने अनुयायियों को स्वर्ग के काल्पनिक लोक का लालच नहीं दिया। उन्होंने यह आश्वाशन भी नहीं दिया कि उनसे जुड़े सभी लोग लक्ष्य तक पहुँच जाएंगे। उनकी दृष्टिकोण की यह खास बात थी कि वे मार्गदर्शन करने वालों को सक्रीय भागीदारी के लिए प्रेरित करते थे। इस तरह बुद्ध ने दर्शन के केन्द्रीय विषय वस्तु के रूप में 'खोज' को अहम मुद्दा माना। वे निरंतर प्रयास को महत्व देते है, केवल अनुयायी बनने को सिरे से ख़ारिज करते है।

बुद्ध का 'मध्यममार्ग' व्यावहारिकता के प्रति नैसर्गिक दृष्टि का श्रेष्ट उदहारण है। यह अतिसंयम और इन्द्रिय सुख में डूब जाने से अलग मध्यममार्ग की वकालत करता है। इसी प्रक्रिया में बुद्ध सादे जीवन के आदर्श तक पहुँचे, जहाँ विलासिता और वंचना की अतियों से बचने का यह सन्देश है। अति की वर्जना से बचने का यह सन्देश हमारे लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। उपभोक्तावाद में आकंठ डूबी हमारे समय की एक विशाल आबादी हर चीज खरीदना, रखना और इस्तेमाल करना चाहती है; उपभोग की उसकी इच्छा अंतहीन है। विश्व पर्यावरण और संसाधन की दुनिया असीमित उपयोग के इस दर्शन से लगातार सिकुड़ती जा रही है। विज्ञान की भविष्यवाणियाँ हमें आगाह कर रही हैं कि कुछ समय बाद पृथ्वी के अनेक हिस्से असीमित उपयोग के दर्शन से नष्ट हो जाएंगे। कहना न होगा बुद्ध के मध्यममार्ग को नैतिकता आज के उपभोक्तावाद के बरअक्स अंतहीन समस्याओं से निजात पाने का व्यावहारिक समाधान है।

हिंसा की लपटों से झुलसते दौर में बुद्ध के संदेशों की एक और अर्थवता है। वे सौहार्द, संवेदना और करुणा की बात करते थे। बुद्ध की छवि सौहार्द और अहिंसा के प्रतीक के रूप में है। उनका मिशन मौजूदा दौर में कहीं ज्यादा प्रासंगिक है। ढाई हज़ार साल पहले बुद्ध इस सवाल की तलाश में संसार में निकल पड़े थे कि लोगों को पीड़ा क्यों होती है, उससे उन्हें मुक्ति कैसे मिल सकती है? उन्होंने इस खोज में, उनकी बात सुनने वाले सभी को शामिल होने का न्यौता दिया। उन्होंने कहा, 'मैं तुम्हें रास्ता दिखा सकता हूँ, लेकिन इस रस्ते पर चलना या चलने का ढंग या फिर कितनी दूर चलना है, यह तय करना तुम्हारा काम है।' 'अपने अंदर झाँककर देखो', उन्होंने कहा कि 'राह दिखाने वाला प्रकाश तुम्हारे भीतर ही है।' बुद्ध के इस खुले निमंत्रण में हमारे समय के अनेक यक्ष-प्रश्नों का जबाब है।

बुद्ध के संदेशों का एक उल्लेखनीय पहलू है- प्रकृति के साथ सामंजस्य। इसके अनेक रूप हैं। जैसे उन्होंने मठवासियों से कहा- वे बरसात में धर्मप्रचार के लिए नहीं जाएँ। इसका अंतर्निहित सन्देश था, बरसात में चूँकि धरती अपने खालीपन को भरने के लिए तैयार होती

है, हरे पौधे बढ़ते है, नए अंकुर फूटते हैं, ऐसे में उन्हें कुचलना ठीक नहीं। उनके वचनों में प्रकृति का भरपूर उल्लेख है, कई बार बेहद काव्यात्मक। यह कविहृदय ही कह सकता है कि समझदार लोग दुःख को उसी तरह देखते हैं, जैसे कोई पहाड़ी आदमी ऊपर से समतल धरती को देखता है। वे ताउम्र वन, उपवन और उद्यानों के सुरम्य वातावरण में रहे।

संदर्भ पुस्तकें

1. *बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 22, (बुद्ध और उनका धम्म), अम्बेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 26*
2. *बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 22, (बुद्ध और उनका धम्म), अम्बेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 288*
3. *बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 22, (बुद्ध और उनका धम्म), अम्बेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 292*
4. *बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 22, (बुद्ध और उनका धम्म), अम्बेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 294*
5. *बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 22, (बुद्ध और उनका धम्म), अम्बेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 295*

❑❑❑

सम्पर्क : वाराणसी

मो. : 9451777960, 8299506779